पूज्य श्री लालचंदभाई का प्रवचन
भिंड, ता. ४-४-१९८९
श्री समयसार, गाथा १३, प्रवचन नंबर P०७

ये श्री समयसारजी परमागम शास्त्र है। समयसार नाम एक है उसका स्थान दो जगह पर है। नाम तो समयसार एक है, और ऐसे समयसार दो जगह पर है। एक तो यह समयसार है शुद्धआत्मा अपना शुद्धआत्मा। बहुत नय मैं नहीं लगाता, सादी भाषा में कहता हुं, की निश्चय से तो आत्मा समयसार इधर है मगर जिसने शुद्ध आत्मा अपने आप से देखा नहीं है अनंतकाल से। अज्ञानी जीवने अपना जो शुद्ध आत्मा जो इधर है, अंदर भगवान परमात्मा, वीतरागी प्रतिमा, चैतन प्रतिमा जड़हड ज्योत विराजमान है अंदर में। ऐसे शुद्ध आत्मा का अपने आप से दर्शन नहीं किया है। उसके लिए यह समयसार की रचना हुई है। अपना शुद्ध आत्मा को दिखाने के लिए समयसार की रचना हो गई है।

यह समयसार अभी भारत का ये भगवान है। अद्वितीय है। ऐसे कुंदकुंद भगवान की यह देन अपने पर बहुत करुणा हो गई। कोई तो देह को आत्मा मानता था, कोई कर्म को आत्मा मानता था, कोई राग को आत्मा मानता था, कोई शास्त्रज्ञान, इंद्रियज्ञान, भावइंद्रिय को आत्मा मानता था। मगर उसमे कोई भी जगह शुद्धआत्मा का लक्षण नहीं है। संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय में भी शुद्धआत्मा का लक्षण नहीं है। शुद्ध तो है, मगर वो अनित्य शुद्ध है, सापेक्ष शुद्ध है, नया प्रगटता है। संवर, निर्जरा, मोक्ष नई पर्याय प्रगट होती है। मगर ये शुद्ध आत्मा तो नित्य शुद्ध है, निरपेक्ष शुद्ध है। मोक्ष की पर्याय प्रगट हो तो ये आत्मा शुद्ध होता है ऐसा नहीं है। सम्यकदर्शन प्रगट होता है तो ये आत्मा शुद्ध है ऐसा नहीं है। वो तो अनादि अनंत शुद्ध है। स्वयं सिद्ध है शुद्ध। निरपेक्ष शुद्ध है।

ऐसे शुद्धआत्मा को बताने वाले यह जिनवाणी, द्रव्यानुयोग, द्रव्यानुयोग में भी उत्कृष्ट समयसार, नियमसार शास्त्र जो कुंदकुंद भगवान ने लिखा, जिसका नाम तीसरा है। आहाहा! परंपरा चलती है-"मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमों गणि, मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं।" शुद्धआत्मा को बतानेवाला ये शास्त्र है। तो जब जैन कुल में जनमता है जीव, तब उसके पास णमोकारमंत्र तो जन्म से ही आता है। णमों अरिहंताणं आदि। मगर जब ज्ञानी मिलता है कोई तब एक दूसरा मंत्र देते है उसको, की ये आत्मा है वो ज्ञाता है और कर्ता नहीं है। आहाहा! ये स्वभाव से ही ज्ञाता है। ज्ञाता होता नहीं है, ज्ञाता है! तो फिर ज्ञाता भी हो जाता है।

क्या कहा? अनादि अनंत स्वभाव से ही आत्मा ज्ञाता है। स्वभाव से ही ज्ञायक हुं। ज्ञायक कहो के ज्ञाता कहो। सर्वज्ञ भगवान की दिव्यध्वनि में आया, की सब आत्मा ज्ञाता है। कोई आत्मा कर्ता है ही नहीं! आहाहा! जो कर्ता मानता है वो अज्ञानी हो जाता है, तो भी पर्याय मे एक समय के लिए विशेष में अज्ञान प्रगट होता है। सामान्य आत्मा तो ज्ञाता ही रहता है। सामान्य ज्ञाता, स्वभाव छोड़कर वो ज्ञाता कर्ता नहीं होता है। क्या कहा? आत्मा एक है, उसका पड़खा दो। एक सामान्य और एक विशेष। सामान्य स्वभाव

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

त्रिकाल, ज्ञानानंद परमात्मा अंदर विराजमान है वो तो ज्ञाता ही है। और उसके विशेष के अंदर उपयोग प्रगट होता है। वो भी ज्ञाता है। उसमे ज्ञान प्रगट होता है। पर्याय में ज्ञान प्रगट होता है। विशेष अपेक्षा से भी, सचमुच तो ज्ञाता ही है। तो भी अनादि काल से अपने स्वभाव को भूलकर जो पराश्रित राग आदि परिणाम प्रगट होता है उसका प्रतिभास स्वच्छ ज्ञान मे आता है क्यू की स्व-पर प्रकाशक ज्ञान की पर्याय का स्वतः स्वभाव है, सामर्थ्य है।

सामर्थ्य और स्वभाव, सामर्थ्य प्रमाणज्ञान का विषय है। स्वभाव शुद्धनय का विषय है। आहाहा! तो स्व-पर का प्रतिभास तो होता है ज्ञान की पर्याय में अज्ञानी जीव को भी। अज्ञानी जीव की पर्याय में भी! स्व-पर का प्रतिभास तो होता है। मगर राग का प्रतिभास जो समय होता है, उस समय में ज्ञानमय आत्मा हुं, भूल जाता है। और में रागी हुं ऐसा मानता है। तो विशेष अपेक्षा से वो कर्ता बन जाता है। विशेष अपेक्षा से कर्ता बने तब भी स्वभाव से तो अकर्ता रहता है। वो कोई अलोकीक जैन दर्शन की बात है।

पानी पर्याय से उष्ण होता है, तब जल, जल (गुजराती आए शब्द तो हिन्दी कर लेना) जल है ने, वो अपनी योग्यता (से), अग्नि से गरम नहीं होता है पानी। और पानी का स्वभाव गरम पर्याय को करता नहीं है। एक समय की इसकी योग्यता जब होती है, जब होती है स्वतंत्र होती है पर्याय। शीतल पानी से भी उष्ण नहीं होता है, और अग्नि से भी नहीं होता है। ये भूतार्थनय से नौ तत्व को जानने के लिए द्रंष्टात है| अहाहा। अग्नि से पर्याय गरम हो तो तो पर्याय पराधीन हो गई। और शीतल स्वभाव से उष्ण हो, तो कभी भी वो गर्मी जा ही नहीं सकती तो वो नित्य स्वभाव हो जाए! मगर ऐसा है नहीं! हा इतना है की अपनी योग्यता से जब (गरम) होती है तब उसमे निमित कारण अग्नि है। तब भी निमित कारण जल नहीं है। क्या कहा? जल गरम पर्याय का उपादान कारण भी नहीं, और निमित कारण भी नहीं। तो उपादान कारण कोन? के गरम पर्याय एक समय की हुई। इसका नाम क्षणिक उपादान है। आहाहा! क्षणिक उपादान जिस को बैठ जाए, तो उसकी द्रष्टि अकर्ता ज्ञायक पर आ जाएगी। आहाहा!

परिणाम को नैमितिक से मत देखो, एक दफे उपादान से देखो। आहाहा! एक दफे तो उपादान से देखो! की यह जल की जो पर्याय गरम होती है, उसमे अग्नि निमित भी नहीं है। क्या कहा? निमित सापेक्ष अभी मत देख, थोड़ी देर के लिए। वो व्यवहार अभी गौण कर दे। आहाहा! अभी तो उसकी स्वतः परिणमन शक्ति है। पर्याय की परिणमन शक्ति से ये पर्याय अपनी योग्यता से होती है। इसमें आता है होने योग्य, परिणाम होने योग्य होता है। नहीं होने योग्य भी नहीं हो और उसका कोई कर्ता बन जाए ऐसा भी नहीं है। आहाहा! तो एक समय की जल की पर्याय गरम हुई वो क्षणिक उपादान योग्यता से होती है। ये उपादान से - क्षणिक उपादान से देखो तो कर्ताबुद्धि छूट जाएगी। और बाद मे उसके निमित का ज्ञान कराने के लिए, ये अग्नि उसमे निमित है। निमित से देखो तो नैमितिक है। और उसको सत्त पर्याय से देखो तो क्षणिक उपादान है। क्षणिक उपादान है, तो अग्नि - पर की द्रष्टि हट गई। और नैमितिक पर्याय थी उस परसे द्रष्टि हट गई, और क्षणिक उपादान देखो तो, आहाहा! कोई करनेवाला दिखता नहीं है। आहाहा!

सर्वज्ञ भगवान की वाणी मे आया है। आहाहा! अभी धोधमार वाणी चलती है, बीस विहारमान तीर्थंकर बिराजमान है, परमात्मा सर्वज्ञ देवाधीदेव बिराजमान है। सीमंधर भगवान अपने से बहोत नज़दीक है। अपने से बहोत इस क्षेत्र से नज़दीक है। समजे! तो प्रतिज्ञा लेते समय, उसकी भी प्रतिज्ञा नमन करके

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

लेते है। तो ये सीमंधर भगवान की वाणी में आया, की मैं भी ज्ञाता और तुम भी ज्ञाता। अरे!! अरिहंत के साथ मिला दिया? मिला नहीं दिया वस्तु की स्थिति है! कह दिया, जैसा ज्ञान मे आया ऐसा वाणी में (आ जाता है) - में भी ज्ञाता और तुम भी ज्ञाता। स्वभाव से ज्ञाता है। त्रिकाल ज्ञाता है। आहाहा! उसको जो भूल गया था, ज्ञानी का जन्म हुआ तो भैया तुं राग द्वेष का करनेवाला नहीं है। तेरा स्वभाव तो जानना देखना है! ज्ञाता स्वभाव है। तो सामान्य पहलु बताया ज्ञानी ने तो उसकी नजर वहाँ ज्ञाता पर आती है।

त्रिकाल ज्ञाता। मैं ज्ञाता हूं। मै ज्ञाता हूं, तो परिणाम में कर्तृत्वबुद्धि (थी वो) छूट गई। और अज्ञान का व्यय होकर विशेष अपेक्षा से भी ज्ञाता हो जाता है। ज्ञाता है और ज्ञाता होता है। ज्ञाता है और ज्ञाता होता है। समय समय पर ऐसा चलता है। अनुभव के बाद, क्या कहा? अनुभव के बाद सामान्य स्वभाव तो ज्ञाता जिसकी द्रष्टि में आया और विशेष अपेक्षा वो जाननरूप परिणमता है। कर्ताबुद्धि छूट जाती है।

ऐसी अलौकिक गाथा १३ नंबर की है। ११ वी गाथा में तो भूतार्थ के आश्रय से सम्यकदर्शन होता है, वो तो कह दिया। मगर एक बात थोड़ी उसकी पुष्टि के लिए है। ११ वी गाथा में शुद्धआत्मा के आश्रय से सम्यकदर्शन होता है। इधर नवतत्व के आश्रय से सम्यकदर्शन होता है, ऐसा कहनेका आशय नहीं है। आहाहा! मगर एक शुद्धआत्मा तो स्व है और नवतत्व पर है। क्या कहा? नवतत्व पर भाव है, पर द्रव्य है, हेय है। ऐसा सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया है।

तो स्व-पर का यथार्थ श्रध्धान टोडरमलजी साहब ने क्या कहा? अकेला स्व का श्रध्धान नहीं लिया, स्व-पर का (यथार्थ लिया)। स्व का तो यथार्थ श्रध्धान और पर का व्यवहार से नय का विषय से ऐसा नहीं है| भूतार्थनयसे तुं द्रव्य को भी देख और भूतार्थनयसे तुं परिणाम को भी देख। आहाहा! तो स्व-पर का यथार्थ श्रध्धान उसका नाम सम्यकदर्शन है। इसका क्या अर्थ है? के यह भगवानआत्मा तो ज्ञाता है। ज्ञाता होने से परिणाम का करनेवाला नहीं है। और परिणाम होता तो है। अन्यमती जो कहते है के सर्वथा अपरिणामी है, ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है। कथंचित अपरिणामी और कथंचित परिणामी, भेद से परिणाम उत्पन्न होता है।

तो स्व पर का यथार्थ श्रध्धान। क्या कहा? स्व और पर, पर में नवतत्व, पर में? (नवतत्व), पर वो पर है, स्व नहीं है। मगर पर भी पर से स्वयं सिद्ध सत्त है। मेरेसे नहीं है। मेरेसे नहीं है। पुण्य-पाप का उत्पादक मैं नहीं हुं। आहाहा! मिथ्यात्व का उत्पादक आत्मा नहीं है। (जब तक) मिथ्यात्व का उत्पादक मैं हूँ, (तब तक) मिथ्यात्व जिंदा रहेगा। आहाहा! अरे! मैं तो ज्ञाता हूँ, आहा! मैं पर्याय का उत्पादक नहीं हूँ। उत्पन्न करनेवाला नहीं हूँ, मैं तो जाननेवाला हूँ, सामान्य को भी जानुं और विशेष को भी जानुं। सामान्य को जानुं और विशेष को करूं? (नहीं) डॉक्टर साब, ऐसा रखो, सामान्य को तो जानुं, और विशेष पर्याय को करुं। अच्छा, पुण्य- पाप करुं तो तो संसार हो जाएगा। पुण्य पाप नहीं करुं मैं। धर्म का परिणाम, संवर, निर्जरा, मोक्ष का परिणाम, वो तो करूं के नहीं? आहाहा! करने की बात भैया नहीं है! तेरी नजर में ज्ञान नहीं आता है, ज्ञाता नहीं आता है, जब ज्ञाता नजर में आ जाएगा, आहाहा! तब विशेष का भी वो ज्ञाता रहेता, कर्ता होता नहीं।

और कभी कोई जगह ये आए संवर, निर्जरा, मोक्ष का कर्ता आत्मा है, केवल उपचार से कहा जाता है। उपचार का कथन है, अनुपचार का कथन नहीं है। अनुपचार से तो अकर्ता रहता है। मगर जो

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

परिणमता है, तो कर्ता कहा जाता है। तो भी कर्ताबुद्धि नहीं होती है ज्ञानी को। कर्ताबुद्धि अलग है और परिणमता है तो कर्ता कहा जाता है, व्यवहार से वो अलग बात है। वो भी जब श्रेणी का काल आता है शुद्धउपयोग का तब उपचार से भी कर्ता खटकता है- संतों को! आहाहा!

ऐसे नियमसार में आया था मगर (समय) नहीं था तो वहाँ खुलासा नहीं हुआ, आया था न। नियमसार की ७७ गाथा से ८१ गाथा है, परमार्थ प्रतिक्रमण, सोनगढ़ का संत, सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना को मानता है की नहीं? के हा मानता है भाई। आहाहा! तुं मानता है ऐसा नहीं मानता है! आहाहा! तुं जैसा मानता है प्रतिक्रमण का स्वरूप ऐसा नहीं है। कोई अलग (प्रकार) का है। तो वहाँ आचार्य भगवान ने फरमाया - की में १४ गुणस्थान, मार्गणास्थान का कर्ता नहीं, कारयिता नहीं, अनुमोदक नहीं और कारण भी नहीं। चार प्रकार से कहा। तो विचार आता है की कर्ताबुद्धि तो चौथा गुणस्थान में छूट गई। फिर छठा-सातवाँ गुणस्थान पर ऐसे समर्थ मुनिराज, कुंदकुंद जैसे मुनिराज फरमाते है - के जो स्वयं प्रगट होता है, उसका में कर्ता (नहीं हुं)। आहाहा! कर्ताबुद्धि तो छूट गई, मगर उपचार से जो कर्ता था, आया था की उपचार से कर्ता है, वो कर्ता की बात खटक गई। तो उपचार से भी आत्मा कर्ता (नहीं है), व्यवहार से भी कर्ता (नहीं है)। निश्चय से तो कर्ता नहीं है मगर व्यवहार से भी कर्ता (नहीं है)। आहाहा!!

एक नयचक्र है माइल्ल धवलका नयचक्र। उसमें एक श्लोक बढ़िया आया है, की जो जीव ऐसे कहेते है, की मैं परिणाम को व्यवहार से करता हुं, ऐसे कहेते तो है, मगर मानते है कि मैं निश्चय से करता हुं। राग का कर्ता व्यवहार से, वीतराग भाव का कर्ता भी व्यवहार से ऐसा बोलते तो है, मगर मानते है की मैं निश्चय से उसका कर्ता हुं, ऐसा श्रद्धा का दोष बना लेता है। व्यवहार के पक्षवालों को, निश्चय तो यथार्थ अनुभव में ख्याल में तो आया नहीं है। और व्यवहार की वाणी बोलता है, मगर श्रद्धा में तो कर्ताबुद्धि रहती ही है! कर्ताबुद्धि ऐसे छूटे नहीं, अनुभव के बिना। आहा! गले, गले मगर टले नहीं। भेदज्ञान से गले की मैं ज्ञाता हुं, कर्ता नहीं। परिणाम तो स्वयं होता है अपने आप, मैं करनेवाला (नहीं हुं)। ऐसा भेदज्ञान का विचार सो व्यवहार। भेदज्ञान का विचार सोनगढ़ के संत ने कोई व्यवहार बताया की नहीं? की हा।

एक बार राजकोट में बडा डॉक्टर वहाँ के प्रसिद्ध, मैं प्रवचन देता था बहोत साल पहेले मंदिर में तो उसने कहा की भाईसाहब आपकी निश्चय की बात बराबर है, निश्चय की बात तो (बराबर है) मगर थोड़ा व्यवहार साथ में जो आप बताओ, तो सोना में सुगंध मिल जाए। अच्छा? बहोत अच्छी बात है आपकी, तो कल से में व्यवहार की बात भी बताऊँगा उसको तो ऐसा ख्याल आया की वो शुभभाव करने की बात कल से भाई कहेंगे। ये वीतराग की गादी पर बैठ कर राग का कर्ता, कहनेवाला, वो गादी पर बैठने लायक नहीं रहेगा। दूसरे दिन मैंने कहा कि भाईसाहब, कल आपने कहा था ना की व्यवहार की बात, तो मैं कहता हुं आज - की राग से आत्मा जुदा है, पुण्य-पाप के परिणाम, आस्रव से आत्मा भिन्न है, ऐसा बारबार विचार करना उसका नाम व्यवहार है। ठंडा हो गया! वो तो माना था (कुछ) और निकला (कुछ)।

और शुरू-शुरू की बात है, शुरू शुरू की बात। राजकोट मे, वो भी बडा प्रसिद्ध था, व्यक्ति का

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

नाम नहीं लेता हुं। उसने कहा भैया थोड़ा आप शुभभाव आत्मा कर्ता है ऐसा व्यवहार को आप स्थापो, मैंने कहा की कल से दूसरे को बिठा देना, मैं वीतराग की गादी पर बैठकर राग का कर्ता मैं बोलनेवाला नहीं हुं। ऐसा है ही नहीं स्वरूप। अरे ज्ञान का कर्ता वो भी खटकता है, तो राग का कर्ता की बात (तो बहोत दूर है) क्योंकि ज्ञान स्वयं उत्पन्न होता है। ज्ञान आत्मज्ञान हों! आत्मज्ञान स्वयं होता है| ऐसा १३ नंबर की गाथा में आया है। भूतार्थनय से तुं जान के संवर की पर्याय अपने आप स्वयं प्रगट होती है। स्वयं उच्छलन्ती है। निर्मल से निर्मल पर्याय स्वयं उच्छलन्ती है। १४१ गाथा है ना मिठाभाई, क्या? १४१ कलश, हां। माल भरा है शास्त्र में तो, भंडार है, खजाना है। कोहिनूर का हीरा अंदर है। ये चैतन्य हीरा हों, जड़ के हीरे की बात नहीं।

ये जो स्वयं प्रगट होता है, उसको मैं कर्ता हूँ, तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। और जो स्वयं उत्पन्न नहीं होता है, उसको भी कर सकता नहीं। और जो स्वयं उत्पन्न होता है वो तेरी कर्ता की अपेक्षा रखता नहीं है। आज फाजलमें (सहजमें) समाचार मिला की युगलजी साहब आ गए है। मैं खुश हुआ। उसमें उसकी शक्ति ख्याल मे आ गई है, इसलिए| प्रशंसा की बात नहीं है, ज्ञान की प्रशंसा है वो तो। व्यक्ति की प्रशंसा नहीं है। आहाहा! १४१!

मुमुक्षुः २०४ गाथा।

उत्तर : हें? २०४ गाथा बराबर। २०४ गाथा के बाद, मतिश्रुत वो अभिनंदता है आत्मा को।

समस्त पदार्थो के समूहरूपी रस को पी लेने की अतिशयता से मानो मत्त हो गई है। ऐसी जिनकी यह निर्मल से भी निर्मल "यस्य ईमां" अच्छा अच्छा! अच्छा अच्छा, अच्छा, अच्छा! नहीं कहते है? बहोत अच्छा है, बहोत अच्छा है, बहोत अच्छा है। ऐसा अच्छा इसमें आया। संस्कृत में। जिनकी ये निर्मल से भी निर्मल संवेदन व्यक्ति, संवेदन व्यक्ति, आत्मा पर लक्ष्य होता है, तो निर्मल पर्याय स्वयं प्रगट होती है। आहाहा! परिणाम के लक्ष्य से परिणाम प्रगट नहीं होता है, द्रव्य के लक्ष्य से परिणाम प्रगट हो जाता है। द्रव्य को जानते जानते पर्याय जनित जाती है। **निर्मल से भी निर्मल संवेदन व्यक्ति (ज्ञान पर्याय) अनुभवमें आनेवाले ज्ञान के भेद**, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान वो ज्ञानकी पर्यायके पाँच भेद है। **अपने आप उछलती है**। आहाहा!

यह स्वयं उच्छलंति, स्वयं उच्छलंति। उसका आत्मा कर्ता नहीं है। और कर्म के अभाव से भी नहीं होता है। पहले तुं निरपेक्ष देख परिणाम को। उपादान से देख। बादमें निमित का ज्ञान हो तो उसका नाम व्यवहार कहा जाता है। मगर निरपेक्ष की द्रष्टि बिना तेरे को व्यवहार निश्चय हो जाएगा। आहाहा! ये ज्ञानावरण कर्म का जब अभाव होता है ना, तब केवलज्ञान होता है। ऐसा नहीं है! तो क्या है, ज्ञानावरण कर्म का अभाव नहीं होता है? सुन, शांतिसे पहले सुन। अभी अभाव की बात आएगी। नंबर २ में आएगा। नंबर १ में क्या है? केवलज्ञान कर्म के अभाव से होता है, या स्वयं होता है? (स्वयं होता है)। आहाहा! स्वयं होता है वो भूतार्थनय है। और वो कर्म का अभाव से हुआ वो व्यवहारनय का ज्ञान है। सापेक्ष व्यवहार है, निरपेक्ष निश्चय है।

कर्म के उदय से राग नहीं होता है। अरे! तो तो स्वभाव हो जाएगा! हाँ पर्यायका स्वभाव होता है। हमको इष्ट है। पर्याय का विभाव स्वभाव है। अरे भैया, पर्याय को सत्त तुंने नहीं देखी है। पर्याय को

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

पराधीन देखता है तो द्रष्टि विपरीत हो जाती है। आहा! देखो, यह यत् स्वयं उच्छलंति। स्वयं याने अपने आप। कल बताया था ४३ नंबर की गाथा में अध्यवसान भी नैसर्गिक स्वयं उत्पन्न होता है। मिथ्यात्वका परिणामका कर्ता भगवानआत्मा को मत देख, मत देख! है नहीं, है नहीं। आहाहा! शुद्धआत्मा, अशुद्ध परिणाम को करे मत देख, तेरी द्रष्टि बिगड़ जाएगी मगर वो कर्ता तो बनेगा नहीं। क्या कहा? तेरी द्रष्टि बिगड़ जाएगी मगर शुद्धात्मा कभी अपना निजभाव को छोड़कर अशुद्ध पर्यायका कर्ता तीनकाल में बननेवाला नहीं है। तेरी मति भ्रष्ट हो गई है। तूने आत्मा को देखा नहीं है। जाना नहीं, पहेचाना नहीं सचमुच रुचिपूर्वक सुना भी नहीं।

जो रुचिपूर्वक ये भगवानआत्मा की बात सुनेगा उसका निर्वाण हो जाएगा। भावी निर्वाण भाजनम्। ऐसा बड़ा ज्योतिषी का यै ज्योतिष है। मुनिराज बड़ा ज्योतिषी है। रुचिपूर्वक आत्मार्थी होकर शुद्धआत्माकी बात (एकबार) सुन तो तेरा काम हो जाएगा। आहाहा! मतार्थी के लिए अवकाश नहीं है। और धन अर्थी के लिए भी अवकाश नहीं है। और मान अर्थी के लिए भी अवकाश नहीं है। मगर आत्मार्थी के लिए अवकाश आ गया है। आत्मार्थी के लिए अपने लिए समयसार लिखा है। इसमें मेरा नाम है उपर। पन्ने पन्ने पर, आप पढ़ो तो आप का नाम, मै पढ़ूं तो मेरा नाम। अपने पर धर्मपिताका पत्र आया है की तुं ज्ञाता है। कर्ता नहीं है।

देखो, स्वयं उच्छलंति अपने आप उच्छलंति है| प्रगट होती है पर्याय। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान अपने आप। यह भगवान। आहा! यह (मैं) भगवान, ये (पर) भगवान नहीं। आहाहा! मेरा भगवान मेरे पास है। मेरा भगवान मेरे पास है। बालक को कहते है न की भगवान का दर्शन करो तो धर्म होगा, ये बात सही है। वो बात सही है - भगवान का दर्शन करो बेटा तो तेरेको धर्म होगा। मगर कोन सा भगवान? व्यवहार रह गया, निश्चय चला गया। आहाहा! व्यवहार रह गया, मगर निश्चय (चला गया)। निश्चयपूर्वक व्यवहार। निश्चय गया और अकेला व्यवहार रह गया। आहाहा!

भगवान अद्भुत निधिवाला। आहाहा! रिद्धि नहीं लिखा है। क्या लिखा है? निधि लिखा है। निधि तो आत्मा का स्वभाव है। रिद्धि तो पुण्य का परिणाम है। रिद्धि में कुछ माल है? (नहीं)। आहाहा! ये निधि आत्माकी, **भगवान् अद्भुतनिधिः चैतन्यरत्नाकरः** है। आहाहा! उसमें तो समुद्र है, ज्ञान दर्शन, चारित्र इतना इतना रत्न भरा है। आहाहा! खजाना है। खान है ज्ञान की। ज्ञान की खान, सुख की खान, वीर्य की खान। खतम होता ही नहीं! केवलज्ञान उसमेंसे सादी अनंतकाल तक प्रगट हो तो भी अधुरा होता नहीं, पूरा का पूरा रहता है। ऐसी अद्भुत निधि अंदर मे है। **चैतन्यरत्नाकर**।

ज्ञानपर्यायरूप तरंगोंके उत्पाद - व्यय है न? उत्पाद – व्यय का नाम तरंग है। जैसे समुद्र मै मोजा (लहर) उठता है ना? ऐसे ध्रुव परमात्माके उपर उपर, अंदर नहीं उत्पन्न होता है। समुद्र के दल मे मोजा (लहर) नहीं उठता है, क्या कहा? समुद्र का दल है उसमे। पटनिजी, उठता है। नहीं, उपर उपर उठता है। ऐसे भगवानआत्मा की जिसको द्रष्टि हो गई, ध्रुव की द्रष्टि हो गई, तो ध्रुव तो उपर ऊपर, ध्रुव को प्रसिद्ध करनेवाला उत्पाद प्रगट होता है। पर को प्रसिद्ध करनेवाला उत्पाद प्रगट होता ही नहीं है। सुन तो सही निश्चय की बात, तुंने सुनी नहीं। आहाहा!

उत्पाद ध्रुव को प्रसिद्ध करता है। लक्षण लक्ष को प्रसिद्ध करता है। लक्षण अलक्ष को प्रसिद्ध नहीं

करता है। अलक्ष को प्रसिद्ध करे वो व्यवहार की बात है। अभी, पहले तो निश्चय की बात याने सच्ची बात तो सुन ले। अनुभव के बाद व्यवहार क्या है वो तेरेको बराबर समज में आ जाएगा। पहले पैसा तो कमा ले दस लाख बाद में व्याज तो स्वयं आएगा।

ऐसी एक (घटना) हुई। ऐसी एक (घटना) हुई। एक बैंक के अंदर, एक भाई सफेद, छप्पन इंच का सफेद कोट, सफेद एकदम बगुले के पंख जैसा धोबी के वहाँ से, सफेद टोपी, सेठ बनकर आया बैंक मैनेजर के पास। साहब मेरकों दस लाख रूपया आपकी बैंक में जमा कराना है। इसका व्याज क्या है? कितने समय में वो पकेगा? वगैरह वगैरह तो (चपरासी) को बुलाया। तो भाईसाहब के लिए थोड़ा ठंडा लाओ। तो ठंडा (मँगवाया)। बैठा, बातचीत किया, बीस मिनिट लगभग बातचीत हुई। बाद में मैनेजर ने पूछा आप की दस लाख की जो है रकम वो कहांसे ट्रांसफर करनी है मेरी बैंक मे? भाई रूपये नहीं है, कमाना बाकी है। गेटआउट (get out) गेटआउट हमारा टाइम बिगाड़ता है। समजे? आहाहा! ऐसा धर्म तो सबको चाहिए वो संवर, निर्जरा और मोक्ष तो व्याज है। शुद्धात्मा तो पूंजी है। पूंजी पर द्रष्टि आए बिना, पूंजी का कबजा (मालिकी) आए बिना व्याज नहीं मिलेगा। आहाहा!

ये निधि है, निधि है न। **अपने आप उछलती है, भगवान अद्‌भुत निधिवाला चैतन्यरत्नाकर, ज्ञानपर्यायरूप तरंगोंके साथ जिसका रस अभिन्न है।** क्या कहा? के ज्ञान दर्शन चारित्राणी जो मोक्षमार्ग है, सम्यक ज्ञान दर्शन चारित्र जो मोक्ष मार्ग है, वो मोक्षमार्ग की पर्याय, शुद्धात्मासे कथंचित अभिन्न है। कथंचित (अभिन्न) है। द्रष्टिअपेक्षा से सर्वथा भिन्न, ज्ञान अपेक्षा से भिन्न - अभिन्न। क्या कहा? द्रष्टि अपेक्षा से तो (सर्वथा भिन्न)। वो पर्याय द्रव्य को तो छूती भी नहीं है। तो अभेद की बात तो,(कहाँ रही) हा.. मगर स्यादवाद सम्यक एकांतपूर्वक अनेकांत का जन्म हो जाता है। सम्यक एकांतपूर्वक अनेकांत का ज्ञान हो जाता है। इधर लिखते है आचार्य महाराज, की वो पर्याय जो प्रगट हुई, वो आत्मा से अभिन्न है, कथंचित अभिन्न है, सर्वथा अभिन्न नहीं है। सर्वथा अभिन्न हो तो पर्याय का व्यय से द्रव्य का नाश हो जाएगा मगर ऐसा होता (नहीं है)। और कथंचित अभिन्न बिना आनंद आता भी नहीं है। क्या कहा? कथंचित, सर्वथा भिन्न, सर्वथा भिन्न, दूर रखो दूर रखो दूर रखो। तेरी द्रष्टि गलत है, समजे? अरे द्रष्टि का विषय में कहता हुं, मगर द्रष्टि के विषय के साथ ध्येयपूर्वक ज्ञेय होता है वो ख्याल है? तो वो ख्याल नहीं है। कथंचित अभिन्न होती है। आनंदमूर्ति को पर्याय स्पर्श कर जाती है तो उसमें आनंद आ जाता है। स्पर्श होते भी अस्पर्शी रहती है। आहाहा! स्पर्श होते भी वह पर्याय तो अस्पर्शी है।

राजकोट में थोड़ी बात हुई, मैंने कहा संध्या, उसका भाव था जात्रा के लिए तो मैंने जात्रा का तो हा बोला, मगर ये भिंडमें शिविर करनी है, मेरे को कहा के सूक्ष्म बात, भाई जितनी सूक्ष्म हो तो उसे बोल देना वहाँ। समझे? क्योंकि सब भगवान आत्मा है ना! कान पर तो पड़े के यह बात क्या है? कान पर पड़े तो विचार करे, विचार करके निर्णय करे, निर्णय के बाद अनुभव का प्रयत्न करे तो अनुभव हो सकता है, आहाहा! तिर्यंच को अनुभव होता है! तो ये तो सब भगवान बैठे है, स्त्री -पुरुष नहीं है कोई। देह को मत देख, कर्म को मत देख, राग को मत देख, इंद्रियज्ञान को मत देख, एक समय की पर्याय को मत देख। उसको जानने की चक्षु बंद कर दे। आहाहा। करने का तो है ही नहीं स्वभाव में, मगर व्यवहारनय से जो जानता था, वो निश्चय बन गया। अभी उसको बंद कर दे तो निश्चय की आंख खुल जाएगी। आहाहा!

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

आत्मदर्शन होगा तेरेको।

ये सब गुरुदेव ने बताया है। बहोत साहित्य बाहर आ गया है। ऐसी आत्मा ही सूक्ष्म है। अभी तो गुरुदेव की गेरहाजरी है। ४५ - ४५ साल तक किया। तो अभी तो सूक्ष्म ही कहना चाहिए| आहाहा! अभी तो ऐसी ध्वनी कान पर आती है, मेरे कान पर। आहाहा! के भाई साहब स्थुल कहनेवाले बहोत है, मगर हमें तृप्ति नहीं होती। आहाहा! मैंने कहा, उपादान तैयार हो जाव, आपके उपादान से तैयार हो जाव, तो सूक्ष्मद्रष्टि में शुद्धात्मा आ जाएगा बस। निमित की राह मत देखो। अपना काम कर लो। साथ में (प्रवचन रत्नाकर) ११ भाग बाहर आ गया है गुरुदेव का। जो कोई प्रश्न उठे तो पुछ लो और अच्छा कोई लगे तो उसके पास चर्चा करो। आहाहा! सब बात का खुलासा गुरुदेवने कर दिया, कोई (बात) बाकी नहीं है।

ये आनंद की पर्याय सर्वथा भिन्न मानने पर सर्वथा भिन्न जो जानेगा तो आनंद नहीं आएगा। द्रष्टि अपेक्षा से सर्वथा भिन्न और ज्ञान अपेक्षा से कथंचित अभिन्न। ज्ञान अपेक्षा से पर्याय स्पर्श कर जाती है, तो आनंदमूर्ति को स्पर्श करती है तो आनंद आता है, मगर स्पर्श करने पर वो तो स्वभाव से अस्पर्शी ही रहती है। क्योंकि उसका व्यय हो जाता है। **भगवान अद्‌भुत निधिवाला चैतन्यरत्नाकर, ज्ञानपर्यायरूप तरंगोंके साथ जिसका रस अभिन्न है**। अभिन्न का है पाठ।

ज्ञान अपेक्षासे कथंचित निश्चय मोक्षमार्ग अभिन्न है। अरे! निश्चय मोक्षमार्ग आत्मा ही है। पर्याय नहीं है। भेद से पर्याय है, अभेद से तो आत्मा है। अरे! कभी कहे पर्याय परद्रव्य, कभी कहे के पर्याय आत्मा, तो क्या समजना? के जैसा है ऐसा समजना। "जहाँ, जहाँ, जो जो योग्य है वहाँ समजना वो, तहाँ तहाँ ते ते आचरे आत्मार्थी जन तेह" गुजराती आ गया इसका हिन्दी कर लेना सब। (कर लेगा) कर लेगा बस। **ज्ञानपर्यायरूप तरंगोंके साथ जिसका रस अभिन्न है ऐसा, एक होने पर भी**, देखो एक एक श्लोक में पूरा भाव भरा है। एक श्लोक में हो! **एक होने पर भी अनेक होता हुआ**, क्या कहा? एक द्रव्यद्रष्टि से आत्मा तो एक ही है। एक ज्ञायकभाव है। एक होने पर भी अनेक होता हुआ, याने पर्याय से देखो तो आत्मा साध्य भी होता है और साधक भी आत्मा है। आत्मा ही साधक और आत्मा ही साध्य है। **अनेक होता हुआ, ज्ञानपर्यायरूप तरंगोंके द्वारा दोलायमान होता है - उछलता है**। आहाहा! उच्छलंती।

ये पर्याय निरपेक्ष सत्त है। वो अधिकार १३ नंबर की गाथा मे कहा है। स्व पर का यथार्थ श्रद्धान, याने स्व तो निरपेक्ष है ऐसा जान मगर पर नवतत्व है वो भी निरपेक्ष है, स्व से भी नहीं और पर से भी नहीं। इसका नाम स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान। पर का यथार्थ श्रद्धान करने से कर्ताबुद्धि छूट जाती है। पर का यथार्थ श्रद्धान करने से कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है| स्वयं पर्याय प्रगट होती है उसको में क्या करूँ? नहीं है उसको क्या में करुं? तो ये स्व के साथ नवतत्व का यथार्थ श्रद्धान याने स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान दोनो ही निरपेक्ष, दोनों ही (निरपेक्ष) आहाहा! द्रव्य से पर्याय नहीं और पर्याय से द्रव्य नहीं। आहाहा! दोनों सत्त भिन्न भिन्न है। प्रमाण से एक सत्त होने पर भी नयविविक्षा से दो सत्त भिन्न है। आहाहा! ऐसे स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान उसका नाम सम्यकदर्शन।

याने नवतत्व का श्रद्धान, जिसको आत्मा का श्रद्धान होता है, उसकी पर्याय मे कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है। तो पर्याय कर्ता का कर्म नहीं बनता है, ज्ञान का ज्ञेय बन जाता है। क्या कहा? ऐसे प्रवचनसार मे ज्ञान ज्ञातृतत्व और ज्ञेयतत्व का दोनों का श्रद्धान सम्यकदर्शन है। याने नवतत्व कर्ता का कर्म मत देख।

ज्ञान का ज्ञेय देख। आहाहा! भाई! कर्ता का कर्म, मत देख ओहो! क्यूंकी तेरे करनेसे नहीं होती है, कर्ता हो तो पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। मै अकर्ता हुं, तो पर्याय तो प्रगट होती है। तो ज्ञान का ज्ञेय है, कर्ता का कर्म नहीं है। ये बात नई आयी, आज नई आयी। वो तो जानती है न सब। भाईसाहब कैसे? बराबर है न? आहाहा!! दुबारा! प्रेमचंदजी बोले हमारे वहाँ। ये इधर बैठा है। खपी है वो। भाईसाहब दुबारा कहो। ऐसा बोलता है।

की जो परिणाम प्रगट होता है, वो कर्ता का कर्म मत देख। जो कर्म देखोंगे तुम तो पर्याय सत्त नहीं रहती है। पर्याय, पर्याय पराधीन हो गई। दो दोष आएगा, एक आत्मा अकर्ता को कर्ता माना, तो त्रिकाल सत्त का नाश हो गया तेरी द्रष्टि में से। तेरी द्रष्टि में रहा नहीं अकर्ता। और पर्याय मेरा कर्म है तो पर्याय स्वयं होती है, वो पर्याय भी पराधीन हो गई, तेरे आधीन हो गई। पर्याय सत्त नहीं रही। निरपेक्ष न रही, तो द्रष्टि विपरीत हो गई। तो अभी क्या करना? पर्याय तो होती है। कर्ता का कर्म नहीं उड़ाया तो है क्या? की आत्मा आत्मा को जानते जानते परिणाम को जानते है। उसका नाम ज्ञातृतत्व और ज्ञेयतत्व दोनों का श्रद्धान सम्यकदर्शन है। प्रवचनसार का पाठ है। बहोत बढ़िया। ये जूना है मेरा। ये परिचित बहोत जूना, सोनगढ़ में। आहाहा! गुरुदेव उसको कभीकभी बीचमें बोले, तो बोले "सेठ ऐसा है"। गुरुदेव उसको सेठ कहकर (बुलाते थे) प्रेम था उनको, उसके ऊपर गुरुदेव का। आहाहा!

तो क्या कर्ता नहीं है परिणाम का? की नहीं! परिणाम स्वयं उत्पन्न होता है, स्वयं उत्पन्न होता है। इसको कोई करनेवाला जगत मे नहीं है। कोई दूसरा भगवान भी करनेवाला नहीं है। और ये (निज) भगवान भी करनेवाला नहीं है। तो कर्म तो कहाँसे करे उसको? कर्म जो सर्वथा भिन्न है, वो कैसे करे उसको? कथंचित अभिन्न है वो भी नहीं करता है।

मुमुक्षु : जबरदस्त न्याय।

उत्तर: जो सर्वथा भिन्न है, वो तो कहाँसे करे? जो कथंचित भिन्न है आत्मा के साथ परिणामका वो भी परिणाम का करनेवाला नहीं है। तो परिणाम का करनेवाला नहीं है तो क्या है? की आत्मा को जानते जानते, ज्ञायकको जानते जानते ये पर्याय ज्ञेय है उसको जान लेता है। आहाहा! उसका नाम "भूयत्थम अभिगता" है।

दूसरा, एक मोक्षमार्ग प्रकाशक का आधार ले कर कहा। एक प्रवचनसार का आधार लेकर कहा। अभी तीसरा आधार बताता हुं। की पुरुषार्थसिद्धि उपाय है, अमृतचंदाचार्य भगवानने लिखा है। चरणानुयोगका शास्त्र है। उसकी टीका टोडरमलजी साहबने, ज्ञानी हो गए टोडरमल साहब, ज्ञानी धर्मात्मा हो गए। आहाहा! उन्होंने टीका की। तो पुरुषार्थसिद्धि उपायमें आचार्य भगवान फरमाते है की, विपरीत अभिनिवेश रहित साततत्व का श्रद्धान उसका नाम सम्यकदर्शन है। क्या कहा? विपरीत अभिनिवेश रहित विपरीत अभिप्राय रहित साततत्व का श्रद्धान (उसका नाम) सम्यकदर्शन है।

वहाँ ऐसा नहीं लिखा एक आत्मा का श्रधान सम्यकदर्शन है। है तो आत्मा का श्रद्धान सम्यकदर्शन, मगर उसके साथ साथ जिसको श्रद्धा प्रगट होती है उसकी कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है, ज्ञान का ज्ञेय बन जाता है, तो उसका यथार्थ श्रद्धान का नाम सम्यक दर्शन है। आहाहा!

आत्मा ज्ञाता है, आत्मा को कर्ता मत देख! पूरे दिन में दस बार, टेन टाइम्स, डॉक्टर साहब, दस-

बार मैं ज्ञाताहुं और कर्ता नहीं हुं। दस बार हों! और बाद में दस बार ऐसा बोलना की ज्ञाता ही हुं। ज्ञाता ही हुं। वो "और" निकाल देना। ज्ञाता हुं और कर्ता नहीं हुं वो निकाल देना। केवल ज्ञाता ही हुं। ज्ञाता ही हुं। ज्ञाता हुं - नहीं। ज्ञाता ही हुं... समजे? ही में सब आ गया। ज्ञाता ही हुं, इसमे कर्ता नहीं हुं आ गया- ही में। एव| आहाहा! 'ज्ञाता ज छूँ' हमारी गुजराती में और हिन्दी में ज्ञाता ही हुं। अहाहा!

बादमें किसका ज्ञाता? वो प्रश्न बडा आता है। वो प्रश्न आता है की नहीं? जिसका ज्ञान है, उसका ज्ञाता हुं! इसका ज्ञान नहीं है, ज्ञान ज्ञेय का नहीं है, ज्ञान ज्ञेय से नहीं होता है, ज्ञेय से भी ज्ञान नहीं होता है और ज्ञेय का भी ज्ञान (नहीं होता है)। ज्ञेय का ज्ञान हो तो, ज्ञान ज्ञेयरूप हो जाए। ज्ञान जड़ हो जाए, और वो तो तीन कालमे बनानेवाला नहीं है। ज्ञेय से ज्ञान हो, तो ज्ञान पराधीन होता है, और ज्ञेय का ज्ञान हो तो ज्ञान जड़ हो जाए। आहाहा! ये सब शास्त्र में है हा, मेरी घरकी बात नहीं है। सब शास्त्र में है, क्यूंकी हमारा गला पकड़े न कोई विद्वान की कहाँ से ये बोलते है? आहाहा!

ये सब सेटीकाकी गाथा है बड़ी, उसमे है सब। वहाँ तो ऐसा लिखा है की ज्ञेयको में जानता हुं, ऐसा तुं मानता है तो जीवतत्वका नाश हो गया। तेरी द्रष्टि में जीव आया नहीं। किशोरीलालजी! ओ किशोरीलालजी ऐसा है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। आत्मज्ञान! आहाहा! ज्ञान ज्ञानसे होता है। सचमुच तो आत्मा से भी आत्मा का ज्ञान नहीं होता है। ज्ञान ज्ञानसे ही होता है तब उसका लक्ष आत्मा पर है, तो आत्मासे आत्माका ज्ञान हुआ, ऐसा कहा जाता है।

जैसे ये भूतार्थनयसे नवतत्व जानने की बात है न, ऐसा पंचाध्यायी में आया है। के अर्थविकल्पात्मक ज्ञान, स्व-पर को जाने उसका नाम ज्ञान है। पंचाध्यायी कर्ता ने कलम चलाया। कुंदकुंद भगवानकी गाथा लिखी, आधार तो कुंदकुंद भगवानका दिया की अर्थविकल्पात्मक ज्ञानं, स्व-पर को जाने उसका नाम ज्ञान है। वो प्रमाण का लक्षण है, तो उन्होंने लिखा की ये ज्ञान की पर्याय असत्त लक्षण है। सत्त लक्षण नहीं है। ये क्या है? की भूतार्थनयसे तुं जान ज्ञानकी पर्याय को, तो सत्त लक्षण होती है। पर्याय पर्याय से है। स्वको जाने तो ज्ञान, पर को जाने तो ज्ञान ऐसा भी सचमुच सूक्ष्म द्रष्टि से देखो। आहाहा! एक बार, द्रव्य को तो सूक्ष्म द्रष्टि से देखो! मगर परिणाम को सूक्ष्मद्रष्टि से देखने से कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है, और द्रव्यद्रष्टि हो जाती है।

ज्ञान की पर्याय स्व-पर प्रकाशक है, स्व-पर को जाने वो लक्षण ज्ञान का है ही नहीं। तो क्या लक्षण है? उन्होंने बताया, ज्ञान तो ज्ञान से है, भूतार्थनय से ज्ञान को जान, अभूतार्थनय से ज्ञान को जाना? आहाहा! ये १३ वी गाथा तो कोई अपूर्व है। ऐसा लिखा है, की जो भूतार्थनयसे नवतत्व को जानता है, नियम से सम्यकदर्शन हो जाता है। याने कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है तो अकर्ता द्रष्टि में आ जाता है। तो भूतार्थनय से ज्ञान हो जाता है। में करनेवाला नहीं हुं, कर्ता का कर्म नहीं है, ज्ञाता का ज्ञेय है, वो भी सचमुच तो व्यवहार है, क्या करे? कर्ता का कर्म नहीं है। ऐसा निषेध करने के लिए कर्म नहीं है? कर्म नहीं है। तो क्या है? की ज्ञान का ज्ञेय है। वहाँ पूर्णविराम नहीं है। वो भी व्यवहार है। आहाहा! अद्‌भुत बात है। ये आत्मकथा चलती है। धर्मकथा है। आहाहा! जिज्ञासा बहोत है। सारा पंडाल भर गया। आत्मा की बात है।

मुमुक्षु : सब लालायित है साब।

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

उत्तर : ये पराधीन द्रष्टि अनंतकालसे, सुख वहाँसे आ एगा। सुख तो लक्ष्मीमें से आएगा और ज्ञान शास्त्रमें से आएगा। क्या कहा? ये पंडित बैठा है, ना बोलता है। गलती है। अच्छा, तो पैसाटका से सुख नहीं है? नहीं, अच्छा, वो तो नहीं हो, तो नहीं हो, मगर शास्त्र से ज्ञान होता है के नहीं? की नहीं होता है। ज्ञान तो आत्मा से होता है। वो भी अपेक्षित कथन है, ज्ञान तो ज्ञान से होता है। वो निरपेक्ष है।

अभी पांच मिनिट सात मिनिट बाकी है। सब ऊपर से आया, अभी पाठ प्रमाणे करते है। **ये जीवादि नवतत्त्व भूतार्थ नयसे जाने हुवे**, याने यथार्थनय से, सत्यार्थनय से जाने हुए, **सम्यग्दर्शन ही हैं**। एव! याने शुद्धात्मा के आश्रय से सम्यकदर्शन और नवतत्व के आश्रय से सम्यकदर्शन ऐसी बात नहीं है। ख्याल रखना। आश्रयभूत आत्मा तो एक ही है। मगर जब तक पर्याय सत नहीं दिखेगी तब तक तेरी द्रष्टि द्रव्य पर आनेवाली नहीं है। कर्ताबुद्धि है तब तक अकर्ता द्रष्टि में आता नहीं है। इसलिए पर्याय सत अहेतुक है तो द्रष्टि वहाँ से हट जाती है और अंदरमे आ जाती है।

सम्यग्दर्शन ही हैं (- यह नियम कहा); कोष्ठक किया पंडितजीने, उसका कोष्ठक कहांसे आया? की "ही" में से आया। ये **(यह नियम कहा)** वह कोष्ठक है। जयपुरमे जयचंद पंडित हो गया न उसने कोष्ठक किया। कोष्ठक कहाँसे आया, नियम, के "ही" इन धी ब्रेकेट (in the brackets), अंग्रेजीमें। काउंस का अर्थ हिन्दीमें क्या है? काउंस का अर्थ ब्रेकेट अच्छा। तो सम्यकदर्शन ही है। जो पर्याय को सत देखता है, जानता है, उसकीं द्रष्टिमें कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है। और अकर्ता ऐसा ज्ञायक पर आ जाती है। अकर्ता ऐसा ज्ञायक है, कर्ता ऐसा ज्ञायक नहीं है। अकारक, अवेदक ऐसा ज्ञायकतत्व, जीवतत्व सामान्य है। आहा!

मगर आगे एक लिटी पूरी होने के बाद व्यवहार की बात बताई। **क्योंकि तीर्थकी (व्यवहार धर्मकी) प्रवृत्तिके लिये अभूतार्थ (व्यवहार)नयसे कहे जाते हैं ऐसे ये नवतत्त्व – जिनके लक्षण जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष हैं** आहा! क्या कहाहा? व्यवहार, क्योंकि तीर्थ की प्रवृति, तो कोई कहे के पुण्य करना वो तीर्थ है की नहीं? की बिल्कुल नहीं है। पुण्य करने की बात ईधर (नहीं है)। आहाहा! पुण्य को करनेवाला आत्मा है ही नहीं। तेरी कर्ताबुद्धि है भैया। उसको जानना कहना वो भी व्यवहार है। कर्ता मानना तो दिल्ली बहोत दूर है। ऐसी कहावत है। आहाहा!

कर्ताबुद्धि तो दिल्ली बहोत दूर है मगर पुण्य पाप को में जाननेवाला हुं। तो जाना कर पुण्य पाप, पुण्य पाप को, कभी आत्मा को जानेगा तुं? जानने का अवकाश नहीं रहेगा, छोड़ दे वो बात। पुण्य पाप का करनेवाला तो नहीं, मगर पुण्य पाप परद्रव्य है, इसलिए में जाननेवाला भी नहीं। परद्रव्य को जानने से ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं। पुण्य पाप परद्रव्य है। इसको (पर चीजको) तो पर द्रव्य सब कहेंगे मगर भावलिंगी संत नित्य आनंद का भोजन करनेवाले मोक्ष की पर्याय को परद्रव्य कहते है। सुन तो सही जरा। आहाहा! रुचिपूर्वक सुन तो सही।आहाहा! पर्याय है न, तो जिसे परद्रव्य का लक्ष से रागी प्राणी को राग होता है, ऐसा भेद, भेद कोई भी भेद, भेद का लक्ष से रागी प्राणी को राग ही होता है। तो राग छुड़ाने के लिए, उसका अवलंबन छुड़ाने के लिए ज्ञान का ज्ञेय बनता है। वो ज्ञेय छुड़ाने के लिए ज्ञायक को ज्ञेय बना ले।

ये ज्ञेय तो बडा ज्ञेय ईधर है, वो तो नाशवान ज्ञेय है। अविनाशी को ज्ञेय बना ले तेरा काम हो

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

जाएगा। अभी व्यवहारनय से प्रवर्तने के लिए अभूतार्थनयसे याने जो नव का भेद है उसको जानना वो व्यवहार धर्म है। क्या कहा? जो नव का भेद को जानना ये पुण्य है, पाप है, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष है। ऐसे, ऐसे उसको जानना, उसका नाम व्यवहारधर्म है। आत्मा को जानना उसका नाम निश्चयधर्म है। आहा! करने की बात है नहीं, जानने की बात भी टेम्पररी (temporary) है। ज्यादा काल भेद को जानने से निर्विकल्प ध्यान आता नहीं है।

थोड़े टाइम के लिए सविकल्प दशा आती है तो ज्ञानी को व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। मगर वहाँ रुकने की बात नहीं है। ईधर ठहरता नहीं है उपयोग, और उपयोग बाहर आ जाता है तो कर्ता नहीं है, ज्ञाता है ऐसा बताना है। मगर कायम (हमेशा) के लिए वो ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। ज्ञान का ज्ञेय तो एक ही है। आहाहा! परिणाम ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। आहाहा! कर्ता, कर्म तो नहीं है, मगर ज्ञान का ज्ञेय भी कामचलाऊ थोड़ा टाइम के लिए उपयोग अंदर में नहीं जमे, उपयोग बाहर गया वो जानता है। वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, वो भी जाना। राग भी थोड़ा है। मचक आती है। साधक को भी अस्थिरताका राग तो आता है उसको जानता है, मगर फिरसे वहाँसे हटकर, फिर से वहाँसे हटकर, अंदर आ जाता है| आहाहा! तो उसका जानना बंद हो गया। पहले जानना बंद किया तो सम्यकदर्शन। बाद में बारबार जानने का बंद करता है तो चारित्र आ जाता है। आहाहा!

भींड भाग्यशाली है ऐसी १३ नंबर की गाथा। रुचिवाला जीव तो होता है न? गुरुदेवका परिचित हो। बहोत जीव को, मुमुक्षु को है अरे! नया आए तो भी समजमें आवे के ज्ञाता हुं और कर्ता नहीं हुं। दस दफे बोलना। खानगी में (अकेलेमें)। किसिको जनाने की जरूरत नहीं। दिखावा करना नहीं है। सोनागिरी में डोलीवालाकों मंत्र दिया बहनने तो बोलने लगा, में जाननेवाला हुं, करनेवाला नहीं हुं। बोलते बोलते चले। उसने कहाँ की थकान हुई नहीं हमको। थकान उतर गई क्योंकि उपयोग फिर गया न? उपयोग वहां है तो दुख है, उपयोग स्वरूप के चिंतवन है तो दुख नहीं होता है। दुख का अभाव तो आत्मा के आश्रय से होता है, मगर स्वरूप का स्मरण करनेसे दुख की मात्रा कम होती जाती है। कम होती है, दुख कम होता है, कम होने के बाद टल जाता है। अंदरमें घुस जावे तो टल जाता है। टाइम हो गया अभी।

मुमक्षुः अहो !ज्ञानामृत बरसे रे, अहो परमामृत बरसे रे। ...

ॐ

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com